



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2020; 6(1): 228-230

© 2020 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 17-11-2019

Accepted: 20-12-2019

डॉ. भारती निश्चल

गंगवारा, सारामोहनपुर, दरभंगा,
बिहार, बिहार, भारत

आत्मदीप—हिन्दी का एक विश्वमानव—काव्य

डॉ. भारती निश्चल

सारांश

संस्कृत—साहित्य की तरह, हिन्दी—साहित्य में भी, राम और कृष्ण—सम्बन्धी उपजीव्य काव्यों की तरह बौद्ध—साहित्य को उपजीव्य नहीं बनाया गया है। ऐसी स्थिति में आधुनिक—हिन्दी साहित्य के एक समधीत विद्वान् डॉ. रमाकान्त पाठक ने बौद्ध—साहित्य को उपजीव्य बनाकर 'बिबिसार', 'यशोधरा', 'अंगुलिमाल', 'आम्रपाली', 'तथागत' और 'राजगृह' की रचनाकर, जिन छोटे आत्मसंभाषों की सम्मिलित संज्ञा उन्होंने 'आत्मदीप' दी है, उनके द्वारा हिन्दी—साहित्य की समृद्धि हेतु एक उल्लेखनीय कार्य किया है। इन छोटे काव्यों में डॉ० पाठक ने बौद्ध धर्म को न केवल संन्यासियों के लिए अपितु गृहस्थादि सभी आश्रमों के लिए उपयुक्त ठहराया है तथा सबके लिए व्यावहारिक तथा अनुकरणीय बताया है। कवि के अनुसार, जनक, याज्ञवल्क्य और श्रीकृष्ण द्वारा आचरित त्यागमय भोगपूर्ण आचरणों को ही मध्यकाल में भगवान् बुद्ध ने और आधुनिक काल में रमण महर्षि, महात्मा गाँधी और ब्रह्मर्षि विनोबा ने विश्वमानव के कल्याण के लिए श्रेयस्कर बताया है। 'आत्मदीप' के सभी आदर्श पात्र अहिंसा, करुणा, मैत्री आदि जिन मानवीय गुणों से संवलित हैं, वे विश्वमानव के विश्वधर्म के लिए भी स्वीकरणीय और अनुकरणीय हैं।

प्रस्तावना

राम और कृष्ण से सम्बन्धित उपजीव्य काव्यों की तुलना में महात्मा बुद्ध से सम्बन्धित उपजीव्य काव्यों को आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में अपेक्षाकृत कम महत्त्व प्राप्त हो सका है। 'आत्मदीप' के रचयिता डॉ. रमाकान्त पाठक ने स्वानुभूत अध्यात्म ज्ञान को, तथागत गौतम बुद्ध को चरितनायक बनाकर, प्रस्तुत किया है, यह हिन्दी—साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। नवम्बर 1980 से लेकर फरवरी 1981 तक के चार महीनों की अवधि में रचित छह स्वगतोक्तियों—बिबिसार, यशोधरा, अंगुलिमाल, आम्रपाली, तथागत तथा राजगृह की समेकित संज्ञा 'आत्मदीप' स्वयं कवि के द्वारा प्रदान की गई है। बौद्धधर्म से सम्बन्धित इन पात्रों के द्वारा कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि भगवान् बुद्ध ने जिस धर्म को मुख्यतः संन्यासियों के लिए अनुकरणीय और गृहस्थों के लिए अव्यावहारिक, माना जाता रहा है, वह गृहस्थादि शेष आश्रमवासियों के लिए भी पूर्णतः व्यावहारिक धर्म है। उसमें और सनातन हिन्दू धर्म में उतना अन्तर नहीं, जितना साम्य है; एक का औदासीन्य दूसरे का निष्काम कर्मयोग ही है। प्राचीन काल में जनक, याज्ञवल्क्य और श्रीकृष्ण ने त्यागमय भोग का जो आदर्श अपने आचरणों के द्वारा उपस्थापित किया था तथा आधुनिक काल के रमण महर्षि, महात्मा गाँधी और ब्रह्मर्षि विनोबा ने जिसका अनुसरण किया था, मध्यवर्ती अवधि में महात्मा बुद्ध ने उसी मार्ग को 'मज्झिम निकाय' कहकर सातत्य और पुनरुज्जीवन प्रदान किया है, ऐसा 'आत्मदीप' से स्पष्ट है।

आसन्न विनाश की आशंका से त्रस्त मानवता के त्राण के लिए कवि का करुणाद्र अन्तःकरण जैसे कृतसंकल्प है। आज की विविध ज्वलन्त समस्याओं का समाधान ढूँढती हुई कवि की दृष्टि भारतीय इतिहास के पुरातन पृष्ठों की ओर जाती है और महाभारत के उस कथन पर, किंचित् विरम जाती है, जिसमें बताया गया है कि व्यतीत काल में सारा समाज धर्म के द्वारा ही परिचालित होता था, राजा, राज्य, दण्ड या दाण्डिकों के द्वारा नहीं—

“नं राज्यं न च राजासीन्न दण्डो न च दाण्डिकः।

धर्मैव धृता सर्वे रक्षन्तिस्म परस्परम्॥”¹

'आत्मदीप' के तथागत ने अपने धर्म में अहिंसा, करुणा, मैत्री आदि जिन मानवीय गुणों पर बल दिया है, उसकी पृष्ठभूमि में समता की वह दृष्टि ही थी जिसका प्रचुर उल्लेख 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान् श्री कृष्ण ने किया है। 'आत्मदीप' में साम्ययोग की यही त्रिवेणी, गंगा—यमुना की भाँति प्रकट रूप में भी और सरस्वती की भाँति अप्रकट रूप में भी, सर्वत्र प्रवाहित हुई है—

Corresponding Author:

डॉ. भारती निश्चल

गंगवारा, सारामोहनपुर, दरभंगा,
बिहार, बिहार, भारत

“जय तुंग अचल की, अतल सिन्धु की, जय हो।
ध्रुव-से-ध्रुव तक समता की धरा अभय हो।
हों सुखी निरामय, शांत, तृप्त, अविकारी,
नर अप्रमाद-से, औ, प्रज्ञा-सी नारी।”²

इस साम्ययोग की साधना के सहारे ही कोई धर्म विश्वधर्म बन सकता है, कोई राज्य विश्व-राज्य बन सकता है, कोई मानव विश्वमानव बन सकता है, कवि की यह मान्यता पूर्णतः यथार्थ और तर्कसम्मत है। पुरातन काल में जगद्गुरु श्रीकृष्ण के द्वारा प्रवर्तित और उदाहृत जिस साम्ययोग को अधुनातन काल में गाँधी, विनोबा, रमण और रवीन्द्र ने चरितार्थ किया है, उसे ही भगवान् बुद्ध ने भी अपने वचनों और आचरणों के द्वारा समुपस्थापित किया था, ऐसा ‘आत्मदीप’ के अवलोकन से स्पष्ट है। तभी यह संभव हुआ है कि दस्युराज अंगुलिमाल, मगधराज बिंबिसार, कुलवधू यशोधरा और नगरवधू आम्रपाली जैसे नर-नारी पात्र तथा गौतम का कण्ठक नामक अश्व, आम्रपाली की मुँहबोली सारिका, उरुविल्वपुर का तक्षक, वैशाली के कपि-सर का हर्ष-मृत मित्र मर्कट तथा अजातशत्रु के मतवाले हाथी जैसे नरेतर प्राणी ही नहीं राजगृह तथा शाल सप्तमि गौतम बुद्ध तथा बहुपुत्र चैत्य जैसे जड़ पदार्थ भी बुद्ध की करुणा के भागी समान रूप से बन सके हैं।

यह साम्ययोग ही है जिसके सहारे अंगुलिमाल, बिंबिसार, आम्रपाली और यशोधरा जैसी चार विपरीत चरितकाष्ठाओं को पृष्ठभूमि में रखकर भगवान् बुद्ध का चरित्र लोकगोचर बनाया जा सका है और वैशिष्ट्य यह कि इनमें से अंगुलिमाल को छोड़कर शेष किसी भी पात्र को बौद्धधर्म में दीक्षित किये जाने की अनिवार्यता का अनुभव आत्मदीपकार को नहीं करना पड़ा है। साम्ययोग की साधना के सहारे जिसने अपने ‘स्व’ को ‘सर्व’ की व्यापकता प्रदान की है, उसकी साधना धर्म-विशेष की न रहकर धर्म-सामान्य की साधना स्वतः बन जाती है, उसका धर्म सनातन मानवधर्म या विश्वधर्म की कोटि में स्वतः पहुँच जाता है और उसका प्रत्येक कार्य, कार्य न रहकर, भगवत्सेवा बन जाता है, बन्धन-कारक न रहकर बन्धन-विमोचक बन जाता है। ‘आत्मदीप’ के अनेक मानव-चरित्र इस तथ्य को व्यंजित करते हैं। अपने ‘अहं’ को विसर्जित कर दस्यु-श्रेष्ठ अंगुलिमाल यदि श्रमण बन जाता है,—

“कि सोया जग गया, जग मैं स्वयं, था मात्र सपना,
गया जो बीत, होकर अन्य, अब अहसास अपना!
कि अनुभव एक अद्भुत, ज्ञात जिसमें खो गया सब,
बचा कुछ भी न होना, एक पल में हो गया सब।”³

अरे यह क्या हुआ? मुझको भला क्या हो गया है?
पकड़ने अन्य को जो दौड़ता था, खो गया है!
खड़ा हेमन्त-सा मैं ढूँ, सब-कुछ झड़ गया है!
पुराना, हाय, अंगुलिमाल, सचमुच मर गया है!”⁴

तो सम्राट् बिंबिसार भी अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि अपना यश भी, तथागत के चरणों में समर्पित कर ‘तत्’ में लीन हो जाता है—

“हो जाओ एक, दूसरे सब, खो बैठो,
जब आप स्वयं ‘वह’ मैं हो ‘तुम’ मत ऐंठो।”
लो विदा, चिता वह अमृत, चढ़ो, बल जाओ,
हो बुद्ध शुद्ध, शव, बिंबिसार, जल जाओ।
देखो, करुणा बन, आया प्रेम-प्रलय है,
नर की न हार, यह नारायण की जय है।”⁵

कुलवधू यशोधरा गुप्तजी की गोपा की भाँति गौतम बुद्ध को उलाहना न देकर, यदि राजमहल में स्वशून्यता और तदर्थ समर्पण की साधना के सहारे गौतम के सत्यान्वेषण में सहयोग देती है—

“जो स्वयं-शून्य, प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण
हर त्याग हवन, जिसका हर ग्रहण कि तर्पण
प्रभु की इच्छा जिसके जीवन में पूरी;
हो भक्त, वही नर, अतिपथ जहाँ न दूरी।”⁶

मंगलमय पथ के पथिक सदा मंगल हो,
तुम जहाँ, वहीं मैं, पुर हो, या जंगल हो।
जब तक गोपा है, मार किसे मारेगा
अपने बाणों से आप वही हारेगा।
छू सकता अंगुलिमाल नहीं वह काया,
है जिसके साथ लगी गोपा, बन छाया।।⁷

तो नगरवधू आम्रपाली भी अज्ञानान्धकार और भेदबुद्धिजन्य नानात्व और अशान्ति की जगह समचित्तता और शान्ति की समधिकारिणी बन जाती है—

“भौचक होना नहीं चिता यमपुर का ताप नहीं है,
समता’ का ही दीप, तिमिर-ममता का शाप नहीं है।
ज्योति वही बतला देती-थे अपने, गैर, समान
भेद विश्व के सारे, तम के ही झूठे अभिमान।”⁸

उक्त चार परस्पर पृथक् मानव-चरित्र जिस अहं-विसर्जन के सहारे एक ही पथ के पथिक बन पाते हैं, वह विश्व के वर्तमान धार्मिक मतों के सार-संग्रह और असार-त्याग के द्वारा विश्वधर्म, विश्वराज्य और विश्वमानवता की भूमि तैयार कर सकता है। बौद्धयुगीन देवदत्त, विरुद्धक और अजातशत्रु जैसे साधुवेशी या राजवेशी दस्युओं की अधिकता और प्रबलता आज भी है, और जिस प्रकार साम्ययोग साधना के अभाव में, बौद्धधर्म में दीक्षित होकर भी देवदत्त, विरुद्धक और अजातशत्रु ‘तथागत’ न होकर ‘अन्यथागत’ ही रह जाते हैं, वैसी ही अन्यथागति, आज के भी अधिकांश तथाकथित दीक्षितों, शिक्षितों और बुद्धिजीवियों के भी बीच क्या विद्यमान नहीं है? वस्तुतः डॉ. पाठक का यह ‘आत्मदीप’ विश्व की वर्तमान समस्याओं के सम्यक् उपस्थापन तथा तत्तत् के सम्यक् समाधान की दिशा में सम्पादित एक अविस्मरणीय साहित्यिक प्रयास है।

निष्कर्ष

आधुनिककालीन हिन्दी-साहित्य के एक प्रखर पंडित कवि डॉ. रमाकान्त पाठक द्वारा नामित ‘आत्मदीप’ संज्ञक काव्य, जिनके अन्तर्गत उन्होंने ‘तथागत’, ‘बिंबिसार’, ‘आम्रपाली’, ‘यशोधरा’, ‘अंगुलिमाल’ और ‘राजगृह’ नाम के छह आत्मसंभाषणक काव्यों को सम्मिलित किया है, विश्वमानव के लिए हितकर विश्वधर्म की स्थापना के उद्देश्य से मार्गदर्शन-स्वरूप प्रस्तुत किया है। पुरातन काल में श्री कृष्ण, जनक और याज्ञवल्क्यादि के द्वारा आचरित साम्ययोग को अधुनातन काल में गाँधी, विनोबा और रमण महर्षि-जैसे महापुरुषों ने अपनाया और मध्यकाल में भगवान् बुद्ध ने भी ‘मज्झिम निकाय’ के नाम से करुणा, अहिंसा, मैत्री आदि से संवलित अपने मत के द्वारा इसी का प्रचार-प्रसार किया। ‘आत्मदीप’ के अवलोकन से स्पष्ट है कि यह एक ऐसा मार्ग है जिस की करुणा के भागीदार दस्युराज अंगुलिमाल मगधसम्राट् बिंबिसार, कुलवधू यशोधरा और नगरवधू आम्रपाली जैसे नर-नारी ही नहीं, कण्ठक नामधारी अश्व, आम्रपाली की मुँहबोली सारिका, उरुविल्वपुर का तक्षक, वैशाली के कपि-सर का हर्षमृत मित्र मर्कट एवं अजातशत्रु के मतवाले हाथी-जैसे नरेतर प्राणी और राजगृह और बहुपुत्र चैत्य-जैसे जड़ पदार्थ भी समान रूप से बन सके हैं। कवि की स्थापना है कि साम्ययोग की साधना के सहारे जिसने अपने ‘स्व’ को ‘सर्व’ की व्यापकता प्रदान की है, उसकी साधना धर्म-विशेष की न रहकर धर्म-सामान्य की साधना बन जाती है, उसका धर्म सनातन मानवधर्म या विश्वधर्म की कोटि में स्वतः पहुँच

जाता है और उसका प्रत्येक कार्य कार्य न रहकर भगवत्सेवा और मोक्षकारक बन जाता है।

संदर्भ

1. महर्षि व्यास : महाभारत, गीताप्रेस गोरखपुर, वि. सं. 2067
2. डॉ. रमाकान्त पाठक : 'बिबिसार', हिन्दी साहित्य परिषद्, हिन्दी-विभाग, ल. ना. मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, प्रकाशन वर्ष-1981, पृ.-1
3. डॉ. रमाकान्त पाठक : 'अंगुलिमाल', प्रज्ञा प्रकाशन, शाहपुर पटोरी (समस्तीपुर) प्रकाशन वर्ष-1980 ई., पृ.-26
4. उपरिवत्, पृ.-27
5. डॉ. रमाकान्त पाठक : 'बिबिसार', पृ.-91
6. डॉ. रमाकान्त पाठक : 'यशोधरा', मोतीलाल बनारसीदास, सन्-1981, पृ.-64
7. उपरिवत्, पृ.-67
8. डॉ. रमाकान्त पाठक : 'आम्रपाली', मोतीलाल बनारसीदास, सन्-1981, पृ.-66